शोध मंथन

मध्यकालीन भारत में स्त्रियों की स्थिति व साहित्य में उल्लिखित महिला चित्रकार

डॉ. अर्चना जोशी
व्याख्याता,
राजकीय महाविद्यालय, राजस्थान

सारांश

सम्राट हर्ष तक भारत में शान्ति व्यवस्था विद्यमान रही। किसी उल्लेखनीय आक्रान्ता से भारत भूमि आहत नहीं हुई और शान्ति व्यवस्था के कारण कला की चरमोन्नति हुई। अजन्ता एलोरा की गुफाएँ इस समय के कलात्मक उत्कर्ष की गौरव गाथा कह रही है परन्तु हर्ष की मृत्यु के समय से मुस्लिम आक्रमणों तक अर्थात् नवीं, दसवीं, ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी के काल में जो कि 'राजपूत काल' कहलाया, राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक आदि प्रत्येक दृष्टिकोण से विंध्योत्तर भारत का ह्रास युग आरम्भ हो जाता है। यहीं से कोई चार सौ वर्ष के उत्तरोत्तर दुरावस्था वाले काल में चित्रकला भी दुरावस्था की ओर ढुलकती चली जाती है। ऐसे समय में जबकि उर्जस्विता एवं ओजस्विता का अभाव हो गया हो, चित्रकला इसका अपवाद कैसे हो सकती थी, फिर भी चित्रकला का स्रोत रिसता रहा। यद्यपि महिलाओं की सामाजिक स्थिति निम्नतर समझी जाने लगी परन्तु समाज में व्याप्त विभिन्न वर्गों की सामाजिक स्थिति के अनुसार ही महिलाओं की स्थिति भी उच्च व निम्न रही। मध्यकाल में जो साहित्य लिखा गया है उसमें चित्रकला के सन्दर्भ में बहुत लिखा गया और उसमें महिलाओं द्वारा चित्रण का भी उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत लेख मध्यकाल में महिलाओं की स्थिति व साहित्य में चित्रकला के संदर्भ में आए उनके उल्लेखों पर प्रकाश डालता है।

मुख्य शब्दः

मध्यकाल, स्त्रियां, साहित्य

लगभग 700 ई. से लेकर 1540 ई. तक का काल भारतीय इतिहास में मध्यकाल माना गया। इस समय उपस्थित सामाजिक, धार्मिक व राजनीतिक परिस्थितियों के वशीभूत पराभव की परिस्थितियों उत्पन्न होना आरंभ हो गई। इस परिवेश में महिलाओं की स्थिति व साहित्य के अंतर्गत उनकी कला क्षेत्र में उपस्थित ध्यान देने योग्य है।

ऐसे समय जबकि स्वस्थ सामाजिक संगठन का ढांचा उत्तरोत्तर अवनति की और अग्रसर हो रहा था, समाज में स्त्रियों की अवस्था भी अपवाद न हो सकी। जिस प्रकार समाज दो वर्गो उच्च और निम्न में मोटे रूप से विभाजित हो गया था। ठीक यही स्थिति इन वर्गों से जुडी स्त्रियों के साथ भी थी। विवाह, शिक्षा, सम्मान व अधिकार आदि सन्दर्भो में मध्यकाल की स्त्रियों में अन्तर देखा जा सकता है। परन्तु कुल मिलाकर वैदिकोत्तर काल से इस काल तक महिलाओ की सम्माननीय स्थिति में अत्यधिक अघोपतन आया ।

समाज में सजातीय विवाह ही श्रेयस्कर माने जाते थे। यद्यपि वयस्क विवाह होते थे परन्तु बाल विवाह की प्रथा प्रचलित हो चली थी। विधवा विवाह निषिद्ध था। विधवायें जीवन पर्यन्त भंयकर यातनायें सहन करती थी, उसका जीवन त्याग और सेवा से पूर्ण तपस्विनी का सा होता था पर निम्न श्रेणी की छोटी जातियो में विधवा विवाह प्रचलित था। क्षत्रियों में कन्या हरण की प्रथा और राज परिवारों में स्वयंवर प्रथा प्रचलित थी। समाज में बहु विवाह प्रथा प्रचलित थी । राजपूतों की कन्या जन्म को उचित नहीं माना जाता था क्योंकि उसके विवाह दहेज, सुरक्षा की बडी समस्या थी इसलिए अनेक बार कन्याओं की उत्पन्न होते ही मार डाला जाता था ।

पूर्व मध्यकालीन समाज में स्त्रियों का सम्मान और आदर होता था। उनकी शिक्षा की व्यवस्था होती थी। पत्नी और माता के रूप में कला और साहित्य में स्त्रियां अभिरूचि रखती थी और कई विदुषी भी होती थी तथा विद्वानों के साथ तर्क वितर्क करती थी। कुलीन सम्पन्न परिवारों की स्त्रियां देवाध्ययन से वंचित होने पर भी मौलिक साहित्य और दर्शन का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लेती थीं। उदाहरण स्वरूप हर्ष की बहिन राज्यश्री अत्यन्त विदुषी थी। संस्कृत के प्रसिद्ध कवि राजशेखर की धर्मपत्नी अवन्तिसुन्दरी भी अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य के लिये प्रख्यात थी। भास्कराचार्य की कन्या लीलावन्ती गणित में प्रवीण थी। मण्डन मिश्र की पत्नि इतनी प्रकाण्ड विदुषी थी कि उसने शंकराचार्य को शास्त्रार्थ में निरूत्तर कर दिया ।

इस युग की संस्कृत साहित्य की कवियित्रियां में इन्दुलेखा, मारूला, मोरिका, सुभुद्रा, शीला, पद्यश्री, मदालसा और लक्ष्मी थी। साहित्य के अतिरिक्त चित्रकला और संगीत की शिक्षा भी उच्च वर्ग की स्त्रियों को दी जाती थी। यौद्धाओं और राजाओं की कन्याओं को अस्त्र शस्त्र और घुड़सवारी की शिक्षा दी जाती थी। कन्यायें संस्कृत पढती लिखती और समझती थी। वे खेल नृत्य और चित्र बनाना सीखती थी।

तत्कालीन साहित्य में ऐसे कोई प्रमाण नहीं है जो इस युग में पर्दा प्रथा के पक्ष में हो, परन्तु सती प्रथा का अधिक प्रचार था। निम्न और साधारण श्रेणी की महिलाओं में आचार विचार का स्तर गिरने लगा था। कतिपय स्त्रियों वेश्यावृत्ति अपनाकर अपना निर्वाह करती थी। दक्षिण भारत में देवदासी प्रथा प्रचलित हो गयी थी। ये देव दासियां गुप्त रूप से वेश्यावृत्ति भी करती थी।

धीरे धीरे इस युग में स्त्रियों के अधिकार कम होते गये। साधारण स्त्रियों की पराधीनता इस काल में निरन्तर बढती रही। दाम्पत्य जीवन के अधिकारों में विषमता आने लगी। स्त्रियों के स्वत्वों को सीमित किया जाने लगा और उनका पद निम्न स्तर का हो गया। उन्हें वेदो और धर्मशास्त्रों के अध्ययन से वंचित कर दिया गया।

धीरे धीरे यह मत भी प्रतिपादित होने लगा कि स्त्री सदा परतंत्र और परालम्बी होनी चाहिये, उसे अपने दुश्चरित्र पति की भी सेवा करनी चाहिये, पतिभक्ति उसके जीवन का धर्म है।

राजपूत लोग अपनी स्त्रियों से प्रेम करते थे और उनका सम्मान और आदर करते थे। राजपूत स्त्री सामाजिक स्वतंत्रता और स्त्रियों की प्राचीन स्वयंवर प्रथा का आनन्द उठाती थी। उसके हृदय में नारीत्व के उच्च आदर्शो की प्रेरणा थी। वह अपने आचार विचार से विशुद्ध पवित्र होती थी, गृहिणी के सब कर्तव्यों का पालन करती थी अपनी पवित्रता और सतीत्व को बनाये रखती थी । देश–भक्ति और राज्य भक्ति की भावना रखती थी तथा विदेशी विजेताओं के हाथों से दूषित होने की अपेक्षा जौहर कर अपने पतिव्रत धर्म और सतित्व की रक्षा करती थी।

संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत व प्रांतीय भाषाओं विशेषकर राजपूत युग के अन्तिम भाग में प्राकृत और अपभ्रंश में अनेक ग्रन्थ लिखें गये। आधिकांश बौद्ध व चित्रित जैन ग्रन्थ इन्हीं भाषाओं में लिखे गये। इस समय राजनैतिक सामाजिक धार्मिक आदि प्रत्येक दृष्टिकोण से मध्यकालीन विंध्योत्तर भारत का हास युग प्रारंभ हो गया। अजंता की श्रेष्ठ कृतियों नेपथ्य के सुपुर्द हो गयी। परन्तु फिर भी चित्रकला लुप्त प्रायः हो गई हो ऐसा नहीं है। वह अपने स्त्रोत खोजती रही और आश्रय पाती रही। चित्रकला अपने सृजन के लिये अधिक वस्तुओं की मांग नहीं करती जैसा कि अन्य कलाओं में होता है। कोई भी सतह जैसे पत्ता, कपडा, भूमि, भित्ति या घर की दीवार किसी की भी मानसिकता के अनुरूप अभिव्यक्ति का माध्यम हो सकती है। यहाँ महिला चित्रकार भी कहीं पीछे नहीं रही।

मध्ययुग में तथा इसके उत्तर काल में समाज में नारी का स्थान भले ही निम्नतर समझा जाने लगा हो, परन्तु नारी ने चित्रण कर्म में अपनी भागीदारी से मुंह नहीं मोडा। जैन धर्म के प्रचार में जैन तीर्थकरों, प्रचारको के अतिरिक्त चित्रित ग्रन्थों ने बहुत भूमिका निभाई। ऐसा माना जाता है कि जैन संघ में पुरुषों की अपेक्षा साध्विया अधिक थी। जिनके चित्रण कर्म में निपुण व संलग्न होने के उल्लेख तत्कालीन साहित्य में मिलते है जिनमें 'अनुपमा' व 'रंगल देवी प्रमुख है।

इस समय के जितने भी चित्र प्राप्त हुए है उनमें चित्रकारों का प्रमाणिक नामोल्लेख नहीं मिलता परन्तु फिर भी कथा ग्रन्थो आदि प्रमाणों से सिद्ध होता है कि जनता की उस समय की चित्रकला में रूचि थी और संस्कृति में उसे प्रमुख स्थान प्राप्त था, केवल पेशेवर चित्रकार और चित्रकृर्तियों ही नहीं होती थी बल्कि राजा से प्रजा तक सभी श्रेणी के स्त्री और पुरुषों में इसका अभ्यास और प्रयोग प्रचलित था। प्रणय और परिणय मे इसका विशेष उपयोग था, मध्यकाल में लिखे, चित्रित किए गये वे ग्रन्थ जिनमें महिला चित्रकारों का सन्दर्भ मिलता है निम्नलिखित है :

कुवलय माला

ई. 779 में राजस्थान के जालोर शहर जबालीपुर में विक्रम संवत 835 में 21 मार्च को यह ग्रंथ कुवलयमाला सम्पन्न किया गया। कुवलयमाला में नायिका कोहलयमाला व नायक कुवलयचंद्र के मध्य विवाह पूर्व जो चित्रों का आदान–प्रदान किया गया। उसमें भरतमुनी के द्वारा दिये गये दृष्टान्त के अनुसार नायिका को दासी या सहचरी सिखाती है कि तुझे अपने प्रिय को संदेश भेजने अथवा रिझाने के लिये 'दिवार' पर अथवा काष्टिका पर या ताड़ पत्र पर किस तरह से चित्र बनाने चाहिये। इस विधि में काष्ट, कपडा, सफेद खडी, तुलिका गिलहरी की पूंछ से किस तरह से बनानी चाहिये और किस तरह से कार्य किया जा। चित्र बनाने से पूर्व धरातल पर लोहे के तीक्ष्ण टुकडे से रेखा खींचनी चाहिये तथा मौसम के अनुसार उसमें रंग भर देवे। सहचरी आगे कहती है चूंकि तुम नायिका सुघड़ कन्या हो इसलिए तुम्हारे द्वारा बनाया गया चित्र अधिक सधा हुआ व आकर्षक होगा, बजाय किसी पुरुष के द्वारा बनाए गए चित्र से।

समराइच्चकहा (हरिभद्रसूरि कृत)

आठवीं शताब्दी में लिखे गये दक्षिण–पश्चिम राजस्थान चित्तोडगढ के इस प्राचीन ग्रन्थ के दूसरे भाग में सिंह कुमार और कुसुमावती के प्रेम प्रसंग में महिला चित्रकार का उल्लेख मिलता है तथा चित्रकला से सम्बन्धित कई चित्रों का भी उल्लेख है। इसी भाव को कुसुमावती की दासी मदनलेखा द्वारा एक द्विपदी छंद के साथ चित्रित कर देने तथा उसी चित्रपट्ट को राजकुमार के पास दिखाये जाने का प्रसंग है। इसी ग्रन्थ के आठवें भाग में ऐसे ही व्यापक प्रसंग शंखपुर के राजा की कन्या रत्नावली से सम्बन्धित है। राजकन्या अत्यन्त रूपवती थी, उसके लिए उचित वर देखने के लिए कई व्यक्ति भेजे गये, उनको यह भी आदेश दिया गया कि वे कन्या के लिए सुयोग्य वर का चित्र बनाकर लाये। इस कार्य के लिए भूषण एवं चित्रमति के चित्रकारों को अयोध्या की ओर भेजने का उल्लेख मिलता है ।

इन प्रसंगों के साथ ही चित्र बनाने एंव रंगो को रखने हेतु रंग पट्टिका या वर्णिका समुद्रकं तथा चित्रपट्ट के लिए चित्रपट्टियं शब्दों का प्रयोग भी महिला चित्रकारों के साथ किया गया।

कथा तरंगवती

प्राकृत भाषा की एक जैन कहानी 'तरंगवती' में तो एक ऐसा प्रसंग आता है कि जिससे उस समय महिलाओं द्वारा चित्र प्रदर्शनियों का होना संभावित होता है। तरंगवती का नायक कहीं चला जाता है अतः तरंगवती अपने घर में चित्रों का प्रदर्शन करती है कि शायद उसके द्वारा उसका पता चल सके।

प्रसन्नराघव

जयदेव कृत प्रसन्नराघव नामक इस नाटक में 'मैत्रेयी' चित्रकत्री का उल्लेख किया गया है, जिसके द्वारा राम और सीता के चित्र बनाने का संदर्भ इस प्रकार है :–

मंजरिक मित्र नूपूरक ! यह क्या है ! जिसे रनिवास की स्त्रियां किसी स्त्री के हाथ से लेकर प्रसन्नतापूर्वक देख रही है।

नूपुरक – मैं ऐसी सम्भावना करता हूँ कि गुरूजी के घर से आई हुई चन्दनिका के द्वारा दिये गये चित्रपट को देख रही है।

मंजरिक – वह चित्रपट तुम्हारे द्वारा देखा गया है।

नूपुरक – स्वामी की पुत्री सीता और नीले कमल की माला के सदृश्य श्याम वर्णमाला, कामदेव के समान रूपवाला, शंकर के धनुष को कान तक खींचने वाला चक्रवर्ती सा कोई एक राजकुमार उसमें लिखा हुआ है।

अहह ! निश्चय ही स्त्रियां बहुत भोली भाली होती है जो कि राजा जनक के इस तरह कठोर प्रतिज्ञ होने पर भी किशोर अवस्था वाले दामाद मिलने की आशा करती है। मित्र, जानते हो! यह चित्र किसके द्वारा बनाया गया ।

नूपुरक हाँ जानता हूँ। महर्षि जनक की पुत्री धर्मचारिणी द्वारा बनाया गया है।

मंजरिक – बडी प्रसन्नता के साथ अब मेरा मनोरथ रूपी अंकुर उग गया। क्योंकि देवी मैत्रेयी तीनों कालों को देखने वाली सिद्धयोगिनी है। वह झूठ नहीं लिखती है यह दुर्बल चित्रण नहीं करती।

विनय पिटक

इस ग्रन्थ के एक प्रसंग में बताया गया है कि कौशल राज प्रसैनजित के प्रमोद सुयोग्य चित्र बनाकर लाये गये। इस कार्य के लिए मनोरम चित्रगार चित्र संग्रहालय की स्थापना की गई थी। इस चित्रागार में प्रदर्शित चित्रों को देखने के लिए प्रतिदिन दर्शकों का मेला लगा रहता था। यहां तक कि अनेक प्रतिबंधों के बावजूद भी कुछ भिक्षुणियां इन चित्रों को देखने का लोभ संवरण नहीं कर पाती थी।

कथा सरित सागर

कथा सरित–सागर नामक इस ग्रंथ की कथा से यह जानने को मिलता है कि परिव्राजिका 'कात्यायिनी' चित्रविधा में बडी नुपिण थी। उसने राजकुमार सुन्दरसेन के आग्रह पर राजकुमारी मन्दारवती का एक सुन्दर

सजीव चित्र अंकित किया था और इसी प्रकार राजकुमार के मित्रों के आग्रह पर उसने राजकुमार का भी सुन्दर चित्र बनाया था ।

इस ग्रंथ की अनेक कथाओं से तत्कालीन समाज की नारी चित्रकारों की सिद्धहस्तता व महत्व का ज्ञान होता है एक अन्य कथा में वासवदत्ता के घर की भित्ति पर 'पदमावती' के द्वारा अंकित सीता की आकृति का वर्णन है। इसी ग्रन्थ में राजा विक्रमादित्य के दरबार में नियुक्त चित्रकार के विषय में कहा गया है कि उसको सामंतो जैसा स्थान प्राप्त था। इसी ग्रन्थ में प्रतियोगिताओं और कुमारदत्त तथा रोलदेव जैसे चित्रकारों का प्रसंग आया है। इससे यह कहा जा सकता है कात्यायिनी भी इस समय की प्रसिद्ध चित्रकृत्री रही होगी ।

सुर सुन्दरीकहा

प्राकृत मागधी भाषा की जैन कहानी 'सुरसुन्दरीकहा' जिसका समय अनुमानतः 1038 ई. है, में नारी के मन में उठे उद्वारो का मनुष्याकृति रहित अन्योक्ति चित्र रचना द्वारा अभिव्यक्तिकरण का सुन्दर काल्पनिक चित्रण किया गया है जिसके अन्तर्गत कोई नायक एक ही नायिका पर रीझा है, अन्य की ओर ध्यान नहीं है, इस बात को एक अवमानिता, एक भ्रमर और कुमुदनी राजि का चित्र बनाकर व्यक्त करती है कि मधुप एक का रस लेने से अन्य सबो को भूल गया है। इसी प्रकार का उल्लेख और मिलता है कि किसी राजप्रसाद में फर्श पर मोरपंख का एक ऐसा चित्र बना दिया गया था कि राजा उसे वास्तविक समझकर उठाने लगा और उसके नख में चोट आ गई।

नैषध काव्य

इस महाकाव्य की रचना श्री हर्ष नामक कवि ने बारहवीं शताब्दी के मध्य की थी। नैषध इस काव्य में 'लिपिषु अतिविख्यात भृता' से उल्लेख मिलता है कि राजकुमारी की सहेलियां चित्रकला में पारंगत थी ।

अभिलाषितार्थ चिन्तामणि मानसोल्लास

चालुक्य वंशीय राजा विक्रमादित्य के पुत्र सोमेश्वर ने 1129 ई. में 'अभिलाषितार्थ चिन्तामणि मानसोल्लास जिसका अपर नाम मानसोल्लास है नामक एक विश्वकोष के रूप में ग्रंथ लिखा। इस ग्रंथ में चित्रकला सम्बन्धी सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है। मानसोल्लास तृतीय विशांति के पहले अध्याय में चित्रकला की विवेचना की है। सोमेश्वर के चित्र विधान पर 'विष्णु धर्मोत्तरपुराण' के चित्रलक्षण का प्रभाव है। इनके अन्तर्गत चार प्रकार के चित्रों का उल्लेख है जिसमें से एक 'धूलि चित्र' है। जिसका एक सामान्य अर्थ अल्पना, चौक पूरना, रंगोली आदि होता है जिसका तत्कालिन समाज में प्रचुरता से प्रचलन इस प्रकार की लोक चित्र शैली को प्रदर्शित करता है।

मध्यकाल लगभग एक हजार वर्ष की लम्बी अवधि तक रहा। उपरोक्त ग्रंथों के संदर्भों से सिद्ध होता है कि इस काल की चित्रकारी में महिलाओ ने परोक्ष–अपरोक्ष रूप से अपनी भागीदारी अवश्य निभाई। अर्थात् महिलाओं ने सिन्धु घाटी सभ्यता से जिस चित्रकला से तारतम्य स्थापित किया था, उसके सूत्र को घोर अव्यवस्था, अशान्ति के काल 'मध्यकाल' में भी नहीं छोड़ा।

संदर्भः

1. *अभिलाषितार्थचिन्तामणि मानसोल्लास – अनुवादकर्ता – आर. शर्मा शास्त्री ई. पुस्तकालय. कॉम*
2. *कथासरित्सागरः– अनुवादकर्ता – स्व पंः केदारनाथ शर्मा सारस्वत, विहार राष्ट्रभाषा परीषद पटना।*
3. *कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, डा० प्रेम सुमन जैन प्राकृत जैन शास्त्र एवं अहिंसा शोध–संस्थान वैशाली, बिहार – 1975*
4. *नैषधकाव्य : इ.पुस्तकालय.कॉम*
5. *प्रसन्न राघवः अनुवादकर्ता – डा. अमरकात त्रिपाठी, चौखम्बा, अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी, 1970।*
6. *पोजीशन आफ वीमेन इन द हिन्दू सिविलाजेशन फ्रॉम प्रीहिस्टोरिक टू प्रेजेंट ड, – ए.एस. अल्टेकर, मोतीलाल बनारसी दास, कैलिफोर्निया, 1938।*
7. *भारतीय चित्रकला का इतिहास, वाचस्पति गेरोलो, मित्र प्रकाशन, इलाहबाद, 1953*
8. *समराइच्चकहा (हरिभद्रसूरी कृत)– सम्पादन–अनुवाद डॉ० रमेशचन्द्र जैन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन प्रथम संस्करण।*
9. *विनय पिटक– अनुवाद एवं संग्रहः वासुदेव देसार "कोविद", प्रकाशकः दुर्गादास रंजित।*